आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज के परम शिष्य मुनिश्री कुन्थुसागरजी महाराज के सान्निध्य में पुणे महाराष्ट्र में दिनांक 11-12 अक्टूबर 2025 को आयोजित राष्ट्रीय विद्वत्संगोष्ठी

अनासक्त योगी आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की निर्दोष चर्या एक दृष्टि

- डॉ. आशीष जैन आचार्य शाहगढ़ सागर
(राष्ट्रपति सम्मानित)
महामंत्री – प्राकृत भाषा विकास फाउण्डेशन
संयुक्त मंत्री – अखिल भारतवर्षीय दि. जैन शास्त्रिपरिषद्

जिस दिन दीक्षा होती है साधु की सल्लेखना उसी दिन से प्रारंभ हो जाती है। कषायों को जीतना वो प्रारंभ कर देता है। **- आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज**

श्रेष्ठ जीवन मानव की सबसे बड़ी उपलिब्ध है। मानवीय जीवन में गलतियों से स्वयं बचना और अन्य प्राणियों को भी बचाना, सर्वश्रेष्ठ जीवन के उदाहरण है। जैन दर्शन में दिगम्बर मुनिराज का जीवन श्रेष्ठता की मिशाल है। जो हिंसा का पूर्ण त्याग करते हैं अर्थात् जहाँ राग मात्र की भी उत्पत्ति नहीं होती है उस अहिंसा का पालन करते हैं। जीव कल्याण की भावना सदा समाहित रहती है। साधु की जीवन चर्या को आत्मसात करते हैं। ऐसे ही अनासक्त योगी आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज इस कलिकाल में निर्दोष चर्या को पालन करने वाले महामना हुए हैं, जिन्होंने श्रेष्ठता के बहुत बड़े उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज एक ऐसे साधक रहे हैं जिन्होंने आत्मकल्याण को ध्यान में रखते हुए स्वयं का कल्याण और अन्य जीवों के कल्याण की भावना को निरंतर भाया है। उन्होंने कीचड़ में कमल की भांति सदा संसार और संसारियों से अनासक्त भाव को बनाकर रखा है। वे एक ऐसे महायोगी रहे हैं, जिन्होंने समयसार के जीवन्त जीवन को जिया है।

आत्मानुशासन में सचेत और आगमोक्त चर्या में केन्द्रित एवं तीन परमेष्ठियों को जीवन्त प्रकट करने वाले आचार्यश्री जीवन एक खुली किताब की तरह पूर्ण दिगम्बर रहा। जो चाहे जहाँ से भी पढ़े उसे काल के भाल पर अंकित पूज्य आदर्श चरण के दर्शन होंगे। यहाँ इस लेख में अनासक्त योगी आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की निर्दोष चर्या एक दृष्टि पर चर्चा प्रारंभ करते हैं, क्योंकि शब्द कम हैं और आचार्यश्री की जीवन्तता अनंत है।

जैन दर्शन के अनुसार साधु का लक्षण - पंच महाव्रत पंच समिति आदि 28 मूलगुणों रूप सकल चारित्र को पालने वाला निर्ग्रंथ मुनि ही साधु संज्ञा को प्राप्त है। परंतु उसमें भी आत्म शुद्धि प्रधान है, जिसके बिना वह नग्न होते हुए भी साधु नहीं कहा जा सकता। पार्श्वस्थ, कुशील आदि पाँच भेद ऐसे

ही कुछ भ्रष्ट साधुओं का परिचय देते हैं। आचार्य, उपाध्याय व साधु तीनों ही साधुपने की अपेक्षा समान हैं। अंतर केवल संघकृत उपाधि के कारण है।

णिव्वाणसाधए जोगे सदा जुंजंति साधवो।

समा सव्वेसु भूदेसु तम्हा ते सव्वसाधवो।512।[1]

मोक्ष की प्राप्ति कराने वाले मूलगुणादिक तपश्चरणों को जो साधु सर्वकाल अपने आत्मा से जोड़े और सर्व जीवों में समभाव को प्राप्त हों इसलिए वे सर्वसाधु कहलाते हैं।512।

चिरप्रव्रजितः साधुः।[2]

तपस्वी शैक्षादि में भेद दर्शाते हुए] जो चिरकाल से प्रव्रजित होता है उसे साधु कहते हैं।[3]

दंसणणाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं।

साधयदि णिच्चसुद्धं साहू स मुणी णमो तस्स।54।।[4]

जो दर्शन और ज्ञान से पूर्ण मोक्ष के मार्गभूत सदाशुद्ध चारित्र को प्रकटरूप से साधते हैं वे मुनि साधु परमेष्ठी हैं। उनको मेरा नमस्कार हो।54।[5]

ये व्याख्यायंति न शास्त्रं न ददाति दीक्षादिकं च शिष्याणाम् ।

कर्मोन्मूलनशक्ता ध्यानरतास्तेऽत्र साधवो ज्ञेयाः।5।[6]

जो न शास्त्रों की व्याख्या करते हैं और न शिष्यों को दीक्षादि देते हैं। कर्मों के उन्मूलन करने को समर्थ ऐसे ध्यान में जो रत रहते हैं वे साधु जानने चाहिए।[7]

विरतिप्रवृत्तिसमानात्मरूपश्रामण्यत्वात् श्रमणम् ।[8]

विरति की प्रवृत्ति के समान ऐसे श्रामण्यपने के कारण श्रमण हैं।

---

[1] मूलाचार/512

[2] सर्वार्थसिद्धि/9/24/442/10

[3] (राजवार्तिक/9/24/11/623/24); (चारित्रसार/151/4)।

[4] द्रव्यसंग्रह/54/221

[5] (पंचाध्यायी / उत्तरार्ध/667)।

[6] क्रियाकलाप/सामायिक दंडक की टीका/3/1/5/143

[7] (पंचाध्यायी / उत्तरार्ध/670)।

[8] प्रवचनसार / तत्त्वप्रदीपिका/203

वैराग्यस्य परां काष्ठामधिरूढोऽधिकप्रभः।

दिगंबरो यथाजातरूपधारी दयापरः ।671।[9]

वैराग्य की पराकाष्ठा को प्राप्त होकर प्रभावशाली दिगंबर यथाजात रूप को धारण करने वाले तथा दया परायण ऐसे साधु होते हैं।

साधु के 28 मूलगुण –

= वदसमिदिंदियरोधो लोंचावस्सयमचेलमण्हाणं।

खिदिसयणमदंतधोवणं ठिदिभोयणमेगभत्तं च ।208।

एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।... ।209।[10]

पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इंद्रियों का रोध, केशलोंच, षड्आवश्यक , अचेलकत्व, अस्नान, भूमिशयन, अदंतधोवन, खड़े-खड़े भोजन, एक बार आहार, ये वास्तव में श्रमणों के 28 मूलगुण जिनवरों ने कहे हैं ।208-209। [11]

उपाध्याय परमेष्ठी का लक्षण -

रयणत्तयसंजुता जिणकहियपयत्थदेसया सूरा।

णिक्कंखभावसहिया उवज्झाया एरिसा होंति ।74।[12]

रत्नत्रयसे संयुक्त जिन कथित् पदार्थोंके शूरवीर उपदेशक और निःकांक्ष भाव सहित; ऐसे उपाध्याय होते हैं।[13]

वारसंगं जिणक्खादं सज्झायं कथितं बुधे।

उवदेसइ सज्झायं तेणूवज्झाय उच्चदि ।511।[14]

---

[9] पंचाध्यायी / उत्तरार्ध/671
[10] प्रवचनसार/208-209
[11] (मूलाचार/2-3); (नयचक्र बृहद्/335); (पंचाध्यायी / उत्तरार्ध/745-746)।
[12] नियमसार / मूल या टीका गाथा 74
[13] (द्रव्यसंग्रह / मूल या टीका गाथा 53)।
[14] मूलाचार / आचारवृत्ति / गाथा 511

बारह अंग (ग्यारह अंग चौदह पूर्व) जो जिनदेव ने कहे हैं उनको पंडित जन स्वाध्याय कहते हैं। उस स्वाध्याय का उपदेश करता है, इसलिए वह उपाध्याय कहलाता है।

चोद्दस-पुव्व-महोपहिमहिगमम सिवत्थिओ सिवत्थीणं।

सीलंधराणं वत्ता होइ मुणीसो उवज्झायो ।32।[15]

जो साधु चौदह पूर्व रूपी समुद्र में प्रवेश करके अर्थात् परमागम का अभ्यास कर के मोक्षमार्ग में स्थित हैं, तथा मोक्ष के इच्छुक शीलंधरों अर्थात् मुनियों को उपदेश देते हैं, उन मुनीश्वरों को उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं।

विनयेनोपेत्य यस्माद् व्रतशीलभावनाधिष्ठानादागमं श्रुताख्यमधीयते इत्युपध्यायः।[16]

जिन व्रतशील भावनाशाली महानुभाव के पास जाकर भव्य जन विनयपूर्वक श्रुत का अध्ययन करते हैं वे उपाध्याय हैं।[17]

चतुर्दशविद्यास्थानव्याख्यातारः उपाध्यायाः तात्कालिकप्रवचनव्याख्यातारो वा आचार्यस्योक्ताशेषलक्षणसमन्विताः संग्रहानुग्रहादिगुणहीनाः।[18]

चौदह विद्या स्थानों के व्याख्यान करनेवाले उपाध्याय होते हैं, अथवा तत्कालीन परमागम के व्याख्यान करने वाले उपाध्याय होते हैं। वे संग्रह अनुग्रह आदि गुणों को छोड़कर पहिले कहे गये आचार्य के समस्त गुणों से युक्त होते हैं।[19]

उपाध्यायः समाधीयान् वादी स्याद्वादकोविदः। वाग्मी वाग्ब्रह्मसर्वज्ञः सिद्धांतागमपारगः ।659। कविर्व्रत्यग्रसूत्राणां शब्दार्थैः सिद्धसाधनात्। गमकोऽर्यस्य माधुर्ये धुर्यो वक्तृत्ववर्त्मनाम् ।660। उपाध्यायत्वमित्यत्र श्रुताभ्यासोऽस्ति कारणम्। यदध्येति स्वयं चापि शिष्यानध्यापयेद्गुरुः ।661। शेषस्तत्र व्रतादीनां सर्वसाधारणो विधिः... ।662।[20]

उपाध्याय-शंका समाधान करनेवाला, सुवक्ता, वाग्ब्रह्म, सर्वज्ञ अर्थात् सिद्धांत शास्त्र और यावत् आगमों का पारगामी, वार्तिक तथा सूत्रोंको शब्द और अर्थके द्वारा सिद्ध करनेवाला होने से

---

[15] धवला पुस्तक 1/1,1,1/32/50
[16] राजवार्तिक अध्याय 9/24/4/623/13
[17] (सर्वार्थसिद्धि अध्याय 9/24/442/7); (भगवती आराधना / विजयोदयी टीका / गाथा 46/154/20)।
[18] धवला पुस्तक 1/1,1,1/50/1
[19] (परमात्मप्रकाश / मूल या टीका अधिकार 7)।
[20] पंचाध्यायी / उत्तरार्ध श्लोक 659-662

कवि, अर्थ में मधुरता का द्योतक तथा वक्तृत्व के मार्ग का अग्रणी होता है ।659-660। उपाध्यायपने में शास्त्र का विशेष अभ्यास ही कारण है, क्योंकि जो स्वयं अध्ययन करता है और शिष्यों को भी अध्ययन कराता है वही गुरु उपाध्याय है ।661। उपाध्याय में व्रतादिक के पालन करने की शेष विधि सर्व मुनियों के समान है ।662।

उपाध्याय परमेष्ठी के 25 विशेष गुण - 11 अंग व 14 पूर्व का ज्ञान होने से उपाध्याय के 25 विशेष गुण कहे जाते हैं। शेष 28 मूलगुण आदि समान रूप से सभी साधुओं में पाये जाने के कारण सामान्य गुण हैं।

आचार्य का लक्षण - साधुओं को दीक्षा शिक्षा दायक, उनके दोष निवारक, तथा अन्य अनेक गुण विशिष्ट, संघ नायक साधु को आचार्य कहते हैं। वीतराग होने के कारण पंचपरमेष्ठी में उनका स्थान है। इनके अतिरिक्त गृहस्थियों को धर्म-कर्म का विधि-विधान कराने वाला गृहस्थाचार्य है। पूजा-प्रतिष्ठा आदि करानेवाला निर्यापकाचार्य है। इनमें से साधु रूपधारी आचार्य ही पूज्य हैं अन्य नहीं।

आयारं पंचविहं चरदि चरावेदि जो णिरदिचारं।

उवदिसदि य आयारं एसो आयारवं णाम।[21]

जो मुनि पाँच प्रकार के आचार निरतिचार स्वयं पालता है, और इन पाँच आचारो में दूसरों को भी प्रवृत्त करता है, तथा आचार का शिष्यों को भी उपदेश देता है उसे आचार्य कहते हैं।[22]

सदा आचारविद्दण्हू सदा आयरियं चरे।

आयारमायारवंतो आयरिओ तेण उच्चदे ॥509॥

जम्हा पंचविहाचारं आचरंतो पभासदि।

आयरियाणि देसंतो आयरिओ तेण उच्चदे ॥510॥[23]

जो सर्वकाल संबंधी आचार को जाने, आचरण योग्य को आचरण करता हो और अन्य साधुओं को आचरण कराता हो इसलिए वह आचार्य कहा जाता है ॥509॥ जिस कारण पाँच प्रकार के

[21] भगवती आराधना / मूल या टीका गाथा 419

[22] (चारित्रसार पृष्ठ 150/4)।

[23] मूलाचार / आचारवृत्ति / गाथा 509,510

आचरणों को पालता हुआ शोभता है, और आप कर किये आचरण दूसरों को भी दिखाता है, उपदेश करता है, इसलिए वह आचार्य कहा जाता है।

पंचाचारसमग्गा पंचिंदियदंतिदप्पणिद्दलणा।

धीरा गुणगंभीराआयरिया एरिसा होंति ॥73॥[24]

पंचाचारों से परिपूर्ण, पंचेंद्रिय रूपी हाथी के मद का दलन करनेवाले, धीर और गुणगंभीर, ऐसे आचार्य होते हैं।

आचरंति तस्माद् व्रतानित्याचार्याः।[25]

जिसके निमित्त से व्रत्तों का आचरण करते हैं वह आचार्य कहलाता है।[26]

पवयण-जलहि-जलोयर-ण्हायामल-बुद्धिसुद्धछावासो।

मेरु व्व णिप्पकंपो सुरो पंचाणणो वण्णो ॥29॥

देसकुलजाइ सुद्धो सोमंगो संग-संग उम्मुक्को।

गयण व्व णिरुवलेवो आयरिओ एरिसो होई ॥30॥

संगह-णिग्गह-कुसलो सुत्तत्थ विसारओ पहियकित्ती।

सारण-वारण-साहण-किरियुज्जुत्तो हु आयरिओ ॥31॥[27]

पंचविधमाचारं चरंति चारयतीत्याचार्याः। चतुर्दशविद्यास्थानपारगाः एकादशांगधराः। आचारांगधरो वा तात्कालिकस्वसमयपरसमयपारगो वा मेरुरिव निश्चलः क्षितिरिव सहिष्णुः सागर इव बहिर्क्षिप्तमलः सप्तभयविप्रमुक्तः आचार्यः।[28]

प्रवचन रूपी समुद्र के जल के मध्य में स्नान करने से अर्थात् परमात्मा के परिपूर्ण अभ्यास और अनुभव से जिनकी बुद्धि निर्मल हो गयी है, जो निर्दोष रीति से छह आवश्यकों का पालन करते हैं, जो मेरु के समान निष्कंप हैं, जो शूरवीर हैं, जो सिंह के समान निर्भीक हैं, जो वर्य अर्थात् श्रेष्ठ हैं, देश

---

[24] नियमसार / मूल या टीका गाथा 73

[25] सर्वार्थसिद्धि अध्याय 9/24/442

[26] (राजवार्तिक अध्याय 9/24/3/623/11)।

[27] धवला पुस्तक 1/1,1,1/29-31/50

[28] धवला पुस्तक 1/1,1,1/49/8

कुल और जाति से शुद्ध हैं, सौम्यमूर्ति हैं, अंतरंग और बहिरंग परिग्रह से रहित हैं, आकाश के समान निर्लेप हैं। ऐसे आचार्य परमेष्ठी होते हैं। (29-30) जो संघ के संग्रह अर्थात् दीक्षा और निग्रह अर्थात् शिक्षा या प्रायश्चित् देने में कुशल हैं, जो सूत्र अर्थात् परमागम के अर्थ में विशारद हैं, जिनकी कीर्ति सब जगह फैल रही है, जो सारण अर्थात् आचरण, वारण अर्थात् निषेध और साधन अर्थात् व्रतों की रक्षा करने वाली क्रियाओं में निरंतर उद्यक्त हैं, उन्हें आचार्य परमेष्ठी समझना चाहिए। (मूलाचार / आचारवृत्ति / गाथा 158) जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य इन पाँच आचारों का स्वयं पालन करते है, और दूसरे साधुओं से पालन कराते हैं उन्हें आचार्य कहते हैं। जो चौदह विद्यास्थानों के पारंगत हों. ग्यारह अंगों के धारी हों, अथवा आचारांग मात्रके धारी हों, अथवा तत्कालीन स्वसमय और परसमय में पारंगत हों, मेरुके समान निश्चल हों, पृथ्वीके समान सहनशील हों, जिन्होंने समुद्र के समान मल अर्थात् दोषों को बाहिर फेंक दिया हो, जो सात प्रकार के भय से रहित हों, उन्हें आचार्य कहते हैं।

पंचस्वाचारेषु ये वर्तंते परांश्च वर्तयंति ते आचार्याः।[29]

पाँच आचारों में जो मुनि स्वयं उद्युक्त होते हैं तथा दूसरे साधुओं का उद्युक्त करते हैं, वे साधु आचार्य कहलाते हैं।[30]

आचार्योऽनादितो रूढेर्योगादपि निरुच्यते। पंचाचारं परेभ्यः स आचारयति संयमी ॥645॥ अपि छिन्ने व्रते साधोः पुनः संधानमिच्छतः। तत्समादेशदानेन प्रायश्चित्तं प्रयच्छति ॥646॥[31]

अनादि रूढि से और योग से भी निरुक्त्यर्थ से भी आचार्य शब्द की व्युत्पत्ति की जाती है कि जो संयमी अन्य संयमियों से पाँच प्रकार के आचारों का आचरण कराता है वह आचार्य कहलाता है ॥645॥ अथवा जो व्रत के खंडित होने पर फिर से प्रायश्चित्त लेकर उस व्रत में स्थिर होने की इच्छा करने वाले साधु को अखंडित व्रत के समान व्रतों के आदेश दान के द्वारा प्रायश्चित्त को देता है वह आचार्य कहलाता है।

आचार्य परमेष्ठी के 36 मूलगुण – आयारवं च आधारवं च ववहारवं पकुव्वीय। आयावायवीदंसी तहेव उप्पीलगो चेव ॥417॥ अपरिस्साई णिव्वावओ य णिज्जावओ पहिदकित्ति। णिज्जवणगुणोवेदो एरिसओ होदि आयरिओ ॥418॥[32]

---

[29] भगवती आराधना / विजयोदयी टीका / गाथा 46/154/12

[30] (द्रव्यसंग्रह / मूल या टीका गाथा 52) (परमात्मप्रकाश / मूल या टीका अधिकार 7/13/), (दर्शनपाहुड/टीका पं.जयचंद 2/पृष्ठ 13), (क्रियाकलाप मुख्याधिकार संख्या 1/1)

[31] पंचाध्यायी / उत्तरार्ध श्लोक 645-646

आचार्य आचारवान्, आधारवान्, व्यवहारवान्, कर्ता, आयापायदर्शनोद्योत, और उत्पीलक होता है ॥417॥ आचार्य अपरिस्रावी, निर्वापक, प्रसिद्ध, कीर्तिमान् और निर्यापक के गुणों से परिपूर्ण होते हैं। इतने गुण आचार्य में होते हैं।

आचारवान् श्रुताधारः प्रायश्चित्तासनादिदः आयापायकथी दोषाभाषकोऽश्रावकोऽपि च ॥1॥ संतोषकारी साधूनां निर्यापक इमेऽष्ट च। दिगंबरोऽप्यनुद्दिष्टभोजी शय्याशनीति च ॥2॥ आरोगभुक् क्रियायुक्तो व्रतवान् ज्येष्ठसद्गुणः। प्रतिक्रमी च षण्मासयोगी च तद्द्विनिषद्यकः ॥3॥ द्विः षट्तपास्तथा षट्चावश्यकानि गुणा गुरोः॥[33]

आचारवान्, श्रुताधार, प्रायश्चित्त, आसनादिदः आयापायकथो, दोषभाषक, अश्रावक, संतोषकारी निर्यापक, ये आठ गुण तथा अनुद्दिष्ट भोजी, शय्याशन और आरोगभूक् क्रियायुक्त, व्रतवान्, ज्येष्ठ सद्गुण, प्रतिक्रमी, षण्मासयोगी, दो निषद्यक, 12 तप तथा 6 आवश्यक यह 36 गुण आचार्यों के हैं।

अष्टावाचारवत्त्वाद्यास्तपांसि द्वादशस्थितेः।

कल्पादशाऽवश्यकानि षट् षट्त्रिंशद्गुणा गणेः ॥76॥[34]

आचार्य गणी गुरु के छत्तीस विशेष गुण हैं यथा - आचारवत्व, आधारवत्व आदि आठ गुण और छह अंतरंग तथा छह बहिरंग मिलाकर बारह प्रकार का तप तथा संयम के अंदर निष्ठा के सौष्ठव उत्तमता की विशिष्टता को प्रगट करने वाले आचेलक्य आदि दश प्रकार के गुण-जिनको कि स्थितिकल्प कहते हैं और सामायिकादि पूर्वोक्त प्रकार के आवश्यक।

रत्नकरंडश्रावकाचार श्लोक 5 पं. सदासुख कृत षोडशकारण भावना में आचार्य भक्ति- 12 तप, 6 आवश्यक, 5 आचार, 10 धर्म, 3 गुप्ति। इस प्रकार ये 36 गुण आचार्य के हैं।"

आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज साधु, उपाध्याय और आचार्य तीनों परमेष्ठियों के गुणों से सहित हैं। उनका जीवन जिनमार्ग के अनुशरण अनुसार ही रहा है। उन्होंने रंच मात्र भी दोष अपनी चर्या में नहीं लगाया है।

---

[32] भगवती आराधना / मूल या टीका गाथा 417-418

[33] बोधपाहुड/टीका में उद्धृत 1/72

[34] अनगार धर्मामृत अधिकार 9/76

निर्दोष चर्या के मायने – निर्दोष चर्या के मायने हैं – 28 मूलगुणों का यथावत् पालन करना, उनमें किसी भी प्रकार का दोष नहीं लगाना। किसी भी मूलगुण को प्रमादादि के कारण दोष नहीं लगाना। दोषानां रहितः निर्दोषः। चर्यते इति चर्या। जो दोषों से रहित चर्या करता है आचरण करता है उसकी वह निर्दोष चर्या है। इस कलिकाल में साधुओं के अट्ठाईस मूलगुणों का सजगता के साथ निर्दोष पालन में आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज रंचमात्र विचिलत नहीं हुए हैं। हमेशा समय के साथ सम्पूर्ण कार्य किए हैं।

आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज का संक्षिप्त परिचय - आचार्य विद्यासागरजी महाराज (10 अक्टूबर 1946 - 18 फरवरी 2024) एक महान दिगंबर जैन आचार्य हैं। उनकी साधना, चर्या और तपश्चर्या प्रत्येक के लिए प्रेरणास्त्रोत है। उनका जन्म कर्नाटक के बेलगांव जिले के सदलगा में 10 अक्टूबर 1946 को हुआ। मल्लप्पाजी पिता और माता श्रीमंतीजी है। उन्होंने आचार्य ज्ञानसागर से दीक्षा ली, जिन्होंने अपना आचार्य पद आपको प्रदान किया। उन्होंने संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं को सीखा भी और उनमें लेखन भी किया। 'मूकमाटी' जैसे उत्कृष्ट महाकाव्य की रचना भी की। 22 वर्ष की आयु में 30 जून 1968 को अजमेर में आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने उन्हें दीक्षा प्रदान की। संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़ और हिंदी सहित विभिन्न भाषाओं में उनका असाधारण ज्ञान था, जिसने उन्हें कई ग्रंथों की रचना करने में सक्षम बनाया। 22 नवंबर 1972 को उनके गुरु आचार्य ज्ञानसागर ने उन्हें आचार्य पद प्रदान किया। उन्होंने महाकाव्य हिंदी कविता 'मूकमाटी' सहित कई ग्रंथों की रचना की। 'निरंजना शतक', 'भावना शतक' जैसे उनके अन्य कार्य भी महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने अपने कर-कमलों से 500 से अधिक मुनि, आर्यिका, ऐलक और क्षुल्लक दीक्षाएँ प्रदान कीं, जो जैन समुदाय में उनकी प्रतिष्ठा का प्रतीक है। वह अपने कठोर तप, अनुशासन और साधु चर्या के लिए प्रसिद्ध थे। उनका 18 फरवरी 2024 को समाधि पूर्वक मरण हुआ।

आचार्यश्री की निर्दोष चर्या के संस्मरण -

निर्भयता - बुन्देलखंड में आचार्य महाराज का यह पहला चातुर्मास था। एक दिन रात्रि के अँधेरे में कहीं से बिच्छू आ गया और उसने एक बहिन को काट लिया। पंडित जगन्मोहनलाल जी वहीं थे। उन्होंने उस बहिन की पीड़ा देखकर सोचा कि बिस्तर बिछाकर लिटा दूँ, सो जैसे ही बिस्तर खोला उसमें से एक सर्प निकल आया। उसे जैसे-तैसे भगाया गया।

दूसरे दिन पंडित जी ने आचार्य महाराज को सारी घटना सुनाई और कहा कि महाराज! यहाँ तो चातुर्मास में आपको बड़ी बाधा आएगी। पंडित जी की बात सुनकर आचार्य महाराज हँसने लगे। बड़ी उन्मुक्त हँसी होती है महाराज की। हँसकर बोले कि-'पंडित जी, यहाँ हमारे समीप भी कल दो-तीन सर्प खेल रहे थे। यह तो जंगल है। जीव-जन्तु तो जंगल में ही रहते हैं। इससे चातुर्मास में क्या बाधा ? वास्तव में, हमें जंगल में ही रहना चाहिए और सदा परीषह सहन करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। कर्म-निर्जरा परीषह-जय से ही होती है।' उपसर्ग और परीषह को जीतने के लिए इतनी निर्भयता व तत्परता ही साधुता की सच्ची निशानी है। कुण्डलपुर(१९७६)

सजगता - आचार्य महाराज का उन दिनों बुन्देलखण्ड में प्रवेश हुआ था। उनकी निर्दोष मुनि-चर्या और अध्यात्म का सुलझा हुआ ज्ञान देखकर सभी प्रभावित हुए। कटनी में आए कुछ दिन ही हुए थे कि महाराज को तीव्र ज्वर हो गया। पं० जगन्मोहनलाल जी की देखरेख में उपचार होने लगा। सतना से आकर नीरज जी भी सेवा में संलग्न थे। एक दिन मच्छरों की बहुलता देखकर पंडित जी ने रात्रि के समय महाराज के चारों ओर पूरे कमरे में मच्छरदानी लगवा दी।

सुबह जब महाराज ने मौन खोला तो कहा कि यह सब क्या किया ? पंडित जी! संसारी प्राणी अपने शरीर के प्रति अनुरागवश ऐसे ही तर्क देकर उसकी सुरक्षा में लगा है और निरन्तर दुखी है। मोक्षार्थी के लिए ऐसी शिथिलता से बचना चाहिए और परीषह-जय के लिए तत्पर रहना चाहिए। कर्म-निर्जरा तभी संभव होगी।' पंडित जी क्या कहते ? विनत भाव से आगम के अनुरूप आचरण करने वाले, परीषहविजयी, शिथिलताओं से दूर और कर्म-निर्जरा में तत्पर आचार्य महाराज के चरणों में झुक गए और सदा के लिए उनके भक्त हो गए। कटनी (१९७६)

स्वयं निर्भय और सबको निर्भय बनाते - चातुर्मास स्थापना का समय समीप आ गया था। सभी की भावना थी कि इस बार आचार्य महाराज नैनागिरि में ही वर्षाकाल व्यतीत करें। वैसे नैनागिरि के आसपास डाकुओं का भय बना रहता था, पर लोगों को विश्वास था कि आचार्य महाराज के रहने से सब काम निर्भयता से सानन्द सम्पन्न होंगे। सभी की भावना साकार हुई। चातुर्मास की स्थापना हो गई।

एक दिन हमेशा की तरह जब आचार्य महाराज आहार-चर्या से लौटकर पर्वत की ओर जा रहे थे तब रास्ते में समीप के जंगल से निकलकर चार डाकू उनके पीछे-पीछे पर्वत की ओर बढ़ने लगे। सभी के मुख वस्त्रों से ढके थे, हाथ में बंदूकें थीं। लोगों को थोड़ा भय लगा, पर आचार्य महाराज

सहज भाव से आगे बढ़ते गए। मन्दिर में पहुँचकर दर्शन के उपरान्त सभी लोग बैठ गए। आचार्य महाराज के मुख पर बिखरी मुस्कान और सब ओर फैली निर्भयता व आत्मीयता देखकर वह डाकुओं का दल चकित हुआ। सभी ने बंदूकें उतारकर एक ओर रख दीं और आचार्य महाराज की शान्त मुद्रा के समक्ष नतमस्तक हो गए।

दोषों से बचते,और बचाते – २५ दिसंबर, २००९, सतना, म.प्र. का प्रसंग है। एक दिन सायंकालीन आचार्य भक्ति के बाद कुछ मुनिराज आचार्यश्रीजी से वैयावृत्ति करवाने के लिए निवेदन करने लगे।आचार्यश्रीजी ने उन्हें मना करते हुए कहा- 'आप लोगों को यहाँ से जाने में अँधेरा होने के कारण पिच्छी से परिमार्जन करते हुए जाना पड़ेगा। अतः अभी समय है, जाओ अपने-अपने स्थान पर बैठो।वैयावृत्ति करोगे तो इसका दोष मुझे लगेगा।' उनमें से दो मुनिराजों ने कहा कि हम लोग तो यहीं सोते हैं। मुनि श्री अनंतसागरजी ने कहा कि हम भी बाजू के ही कमरे में सोते हैं। आचार्यश्रीजी बोले- 'जाना तो पड़ेगा, कुछ कम दोष लगेगा, पर दोष तो लगेगा।' मुनिश्रीजी ने कहा- 'अभी तो कुछ प्रकाश है, जब तक थोड़ी-सी वैयावृत्ति करने का मौका मिल जाएगा।' आचार्यश्रीजी बोले- 'यदि अँधेरा हो गया तो दोष किसे लगेगा ?' मुनिश्रीजी ने कहा- 'मुझे लगेगा।' आचार्यश्रीजी बोले- 'पर निमित्त तो मैं बनूँगा, तो दोष मुझे ही जाएगा।' यह सुनकर सभी मुनिराज अपने अपने स्थान पर चले गए।

आचार्य महाराज ने आशीष देते हुए कहा कि-‘निर्भय होओ और सभी लोगों को निर्भय करो। हम यहाँ चार माह रहेंगे, चाहो तो सच्चाई के मार्ग पर चल सकते हो।” वे सब सुनते रहे, फिर झुककर विनय भाव से प्रणाम करके धीरे-धीरे लौट गए। फिर लोगों को नैनागिरि आने में जरा भी भय नहीं लगा। वहाँ किसी के साथ कोई दुर्घटना भी नहीं हुई। आचार्य महाराज की छाया में सभी को अभय-दान मिला। नैनागिरि (१९७८)

कषाय से बचने का उपाय – किसी साधक ने आचार्यश्रीजी से जिज्ञासा व्यक्त करते हुए कहा- 'वैसे तो धर्मात्मा लोग कषाय से बचे रहते हैं, किन्तु आपसी कषाय से नहीं बच पाते। आपसी कषाय से बच सकें, ऐसा उपाय बताने की कृपा करें।' आचार्यश्रीजी ने समाधान करते हुए कहा- 'कषाय से बचना चाहते हो तो एक सूत्र है दूसरे के बारे में मत सोचो। सहपाठी से बचोगे तो कषायें उद्वेलित नहीं होंगी। उन्हें ध्यान का विषय मत बनाओ, अपने बारे में चिंतन करो। दूसरे के बारे में सोचना है तो उसकी अच्छाई के बारे में सोचो। भूलकर भी दूसरों के बारे में बुरा नहीं सोचना चाहिए। दूसरों की बुराइयों को याद करते रहने से वह बुराइयाँ अपने मन पर हावी होने लगती हैं। हमारी कषाय नोकर्म (शरीरादि) को देखकर उद्वेलित हो जाती हैं।' आचार्यश्रीजी ने उदाहरण देते हुए कहा- 'हमारे अंदर कषायों का बारूद भरा है। आग का सम्पर्क मिलते ही वह फूट पड़ता है। करंट स्विच के अनुसार कार्य करता रहता है।

करंट वही है, स्विच पंखे वाला दबाओ, पंखा चलने लगेगा। हीटर, बल्ब जिसका चाहो उसका स्विच दबाकर उसे काम में ले सकते हो। वैसे ही परिणामों के अनुसार कषायों के उत्पन्न होने एवं फल देने के कार्य चलते रहते हैं। इसलिए दूसरे की गलती, बुराई, दोष आदि के बारे में न सोचें, क्योंकि यही निमित्त है जो हमारी कषायों को भड़का देते हैं। गुरुवर श्री ज्ञानसागरजी महाराज को स्मरण करते हुए आचार्यश्रीजी बोले- 'आचार्य महाराज ने बताया कि हम कषाय की परिभाषा में उलझकर भी कषाय कर जाते हैं, लेकिन कषायों का उपशमन नहीं कर पाते। एक बार उन्होंने किसी पंडितजी से पूछा कि कषाय किसे कहते हैं? दो-तीन बार पूछा। फिर थोड़ा ज़ोर से बोले, अरे! परिभाषा भी नहीं आती आपको। महाराजजी भी मुस्कुराते हुए बोले- अपनी बात ज़बरन मनबाना, ज़ोर से बोलना, यह भी कषाय की सूक्ष्म परिणति है।

पर कल्याण की गहरी चाह - शिष्य, मुझसे भी पहले भगवान बनें - आचार्यश्रीजी द्वारा दीक्षाएँ प्रदान की जा रहीं थीं, जिसे देखकर, दीक्षा के बाद एक श्रावक ने आचार्यश्रीजी से पूछा- 'आचार्यश्रीजी आप दीक्षा देते - समय क्या सोचते हैं, ये शिष्य विद्वान बनें ?' आचार्यश्रीजी बोले- 'नहीं।' पुनः' वह श्रावक बोले- 'तो क्या यह सोचते हैं कि ये शिष्य महान् बनें?' आचार्यश्रीजी बोले- 'नहीं, मैं तो यह सोचता हूँ कि यह शिष्य मुझसे भी पहले भगवान बनें।

पर-कल्याण की इतनी चाह, संसारी जीवों के प्रति करुणा के यह भाव शीघ्र ही उनकी गणना तीर्थंकर प्रकृति के बंधक जीवों में करवाने वाले होंगे।अहो! परम धन्य हैं।

शीत सहन करो - दिसंबर-जनवरी माह की कड़कड़ाती ठंड में आचार्य संघ का विहार नरसिंहपुर, मध्यप्रदेश की ओर चल रहा था। एक दिन रात्रि विश्राम की व्यवस्था एक स्कूल में कर दी गई।वह स्कूल क्या था मानो पूरा हवामहल ही था। उसकी छत खप्पर की थी। बड़े-बड़े कमरों में बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ एवं दरवाजे थे। वहाँ जाकर जब संघ विराजमान हुआ, तब श्रावकों की दृष्टि उस हवामहल की ओर गई। तत्काल ही आस पास के पक्के मकानों में संघ के ठहरने की व्यवस्था की गई। चूँकि रात होने से पूर्व व्यवस्था हो गई थी, सो अधिकांश मुनिजन वहाँ चले गए, पर आचार्य भगवन् वहाँ से हिले भी नहीं। और शिष्यों से कहा- 'ध्यान लगाओ, जिससे अग्नि/ताप पैदा होगा एवं उस ताप से आपकी ठण्ड की रात आसानी से गुज़र जाएगी।' भयंकर कड़ाकेदार ठंड वाली यह रात उन्होंने ध्यान करते-करते निकाल दी।

आचार्यश्रीजी जो उपदेश साधुओं को या फिर श्रावकों को देते हैं, उसका स्वयं भी पालन करते हैं, चाहे वे अनुकूलता में हों या फिर कितनी ही कठिन विपरीतता में ही क्यों न हों।

देते आहार संबंधी चिंतन - १० फरवरी, २००६, कुंडलपुर (दमोह) म. प्र. में आचार्यश्रीजी अपने शिष्यों को आहार संबंधी चिंतन देते हुए कहते हैं- 'आहार देना और आहार करना दोनों दुर्लभ हैं। भोजन (आहार) करना, एक बार भोजन करना, एषणा-समिति के साथ भोजन करना, यह एक मूलगुण है। भोजन करते रहते हैं तो भी निर्जरा होती रहती है। यदि अविरति भोजन करता है तो कर्म बंध करता रहता है। इसलिए हे साधो! अच्छे ढंग से आहार करो। उपवास करने वाला ही निर्जरा करता है, ऐसा नियम नहीं। क्योंकि एषणा-समिति के साथ जो भोजन किया जाता है, वह भोजन नहीं अपितु गाड़ी में पेट्रोल डालना है। इसलिए एक-आधा-डेढ़ घंटे तक किया जाने वाला वह भोजन भी कर्म निर्जरा का कारण है। जो रोज़-रोज़ आहार करते हैं, उन्हें दीनता भी नहीं आना चाहिए। क्योंकि कुछ गाड़ियाँ ऐसी होती हैं, जिन्हें रोज़ पेट्रोल चाहिए। और कुछ गाड़ियाँ ऐसी होती हैं, जो कम पेट्रोल खाती हैं और काम ज़्यादा करती हैं। मैं आहार ले रहा हूँ या आहार छोड़ रहा हूँ ऐसा भाव न आना ही सबसे बड़ा अध्यात्म है। तीर्थंकर भी आहार के लिए उठे थे।'

ऐसे करें आहार - साधक की साधना व्यवस्थित सधती रहे, इसके लिए उसे अपने पेट में आहार संबंधी ओंगन कब, कितना, कैसे डालना चाहिए? इसको बताते हुए १* जनवरी, २००*, चौक मंदिर, भोपाल, मध्यप्रदेश में आचार्यश्रीजी ने कहा- 'जैसे दोहा या छंद में मात्राएँ ठीक रहती हैं, तो लय ठीक बनती है। लय ठीक होने से वन्स मोर होता है, अन्यथा सब बोर हो जाते हैं। ऐसे ही भोजन में पानी मात्रानुसार सेवन करने से प्रतिकूल भोजन भी नुकसान नहीं करता। इससे साधना का मार्ग ठीक बनता है। प्रारंभ में आठ अंजुली पानी गिन करके पी ही लेना चाहिए, आहार के बीच में और अंत में तो लेते ही हैं। लेकिन प्रारंभ के पानी का असर (प्रभाव) अलग होता है। किडनी, पेट आदि संबंधी रोगों में यह प्रक्रिया फ़ायदेमंद है। उदाहरण में प्रारंभ का पानी पुराने मल को निकालने में समर्थ होता है। पानी की मात्रा कम होने पर ही सारे रोग होते हैं। अजीर्ण आदि होने पर मुँह से बास आती है, खट्टी डकारें आने लगती हैं। जैसे खिचड़ी में पानी की मात्रा कम होने पर वह जल जाती है, उसमें बास आने लगती है, वैसी ही पेट की स्थिति है। जैसे- चावल (भात) जब बनता है तो पहले पानी डालते हैं, फिर उसमें चावल धोकर डालते हैं। फिर चार अंगुल नाप कर, दुगुना पानी डालते हैं, तब सही भात (चावल) बनता है। वैसे ही भोजन में पानी की मात्रा पर्याप्त होना चाहिए। आधा भोजन व दुगुना पानी होना चाहिए। तिगुना श्रम एवं चौगुनी हँसी। हाँऽऽ तभी वर्ष सवासौ (१२५ वर्ष) जी सकता है। शुरू में पानी आदिनाथ से चन्द्रप्रभ बोलकर गिनकर आठ अंजुली, फिर बीच में पुष्पदंत से शांतिनाथ तक गिनकर आठ अंजुली और अन्त में कुंथुनाथ से महावीर तक गिनकर आठ अंजुली। इस प्रकार इतना पानी तो आहार के साथ होना ही चाहिए। शुरू में पानी इतना (आठ अंजुली) लेने पर धीरे-धीरे उल्टी

आदि सभी शमन को प्राप्त हो सकती हैं। जैसे- क्रेन को बैलेंस से उठाते हैं, वैसे ही अंजुली को धीरे-धीरे उठाना चाहिए।

मूलगुणपालन में रहें स्वाश्रित - आचार्यश्रीजी का कहना रहता है कि साधकों को केशलुंचन, प्रतिक्रमण आदि मूलगुणों के परिपालन में स्वाश्रित होना चाहिए। इसके लिए वह अपने शिष्यों को तदनुकूल प्रेरित एवं प्रोत्साहित भी करते रहते हैं। एक बार नवदीक्षित दो मुनिराजों ने मध्य रात्रि से केशलुंचन करना प्रारंभ किया, लगभग छह घंटे हो गए करते-करते, पर लुंचन १० प्रतिशत ही हो पाए। प्रातः आचार्य भगवन् उनके कमरे में आए। संघस्थ ज्येष्ठ साधु ने बताया कि छह घंटे में मात्र इतने ही हो पाए हैं।

आशीर्वाद हो तो हम कर दें। गुरुजी ने केशलुंचन कर रहे मुनिराजों से पूछा कि ठीक लग रहा है, आप कर लेंगे ? उन्होंने स्वीकृति में विनत भाव हो, हाथ जोड़ लिए। हमारा आशीर्वाद है, लगे रहो सैनिको!' ऐसा कहकर आचार्यश्रीजी अपने स्थान पर चले गए। जिस तरह सैनिक शत्रु सेना को मात करने के लिए बॉर्डर पर सजग होकर तैनात रहते हैं, इसी तरह साधक को भी कर्म शत्रु की सेना को परास्त करने के लिए प्रतिसमय सतर्क रहना चाहिए। इस दृष्टि से आचार्यश्रीजी मोक्षमार्ग के साधकों को कभी-कभी सैनिक भी कह देते हैं। ऐसा कहकर गए हुए उन्हें आधा-पौन घंटा ही हुआ था कि दोनों मुनिराज केशलुंचन करके गुरु चरणों में आशीर्वाद लेने पहुँच गए। जहाँ गुरु आशीष है, वहाँ कोई भी कार्य असंभव नहीं है। उस समय यदि करुणा करके आचार्यश्रीजी अन्य मुनिराज द्वारा केशलुंचन करवा देते, तो ये नवदीक्षित मुनिराज स्वाश्रित न बन पाते।

इसी तरह सन् १९८९, सिद्धक्षेत्र कुंडलपुर (दमोह) म.प्र. में आर्यिका श्री अनंतमतिजी ने दीक्षा के बाद प्रथमबार केशलोंच किया। वह अपने हाथ से पूरा नहीं कर पाई, अतः उन्हें सहयोग लेना पड़ा। जब उन्होंने प्रातः जाकर गुरुचरणों में नमोऽस्तु पूर्वक निवेदन किया- 'आचार्यश्रीजी! आप की छत्रच्छाया में बहुत अच्छा लग रहा है, आज दूसरा उपवास करने की भावना है।' आचार्यश्रीजी मुस्कुराकर बोले- 'पहले गाड़ी पटरी पर लाओ, फिर स्पीड बढ़ाओ। यानी पहले केशलोंच रूपी मूलगुण स्वाश्रित करो, फिर उत्तरगुण (बेला - दो उपवास आदि) का पालन करो।

वचनबल का सिखाते प्रयोग - आचार्यश्रीजी अल्पभाषी एवं निवृत्तिपरक साधु हैं। वे कहते हैं- "जिस प्रकार अर्थ (धन) की प्राप्ति होने के उपरांत खर्च कितना-कैसा-क्या करना है, यह सोचा जाता है। उसी प्रकार लाभ-हानि समझकर बनती कोशिश प्रवृत्ति नहीं करना चाहिए। बातों-बातों में पैसा खर्च नहीं किया जाता, तो बातों बातों में वचन बल भी खर्च नहीं करना चाहिए। बोलते हैं तो शारीरिक

श्रम लगता है, खून ज़्यादा खर्च होता है। खून तो कम बन रहा है और बोलते ज़्यादा हो, तो क्या होगा ? खर्चा ज़्यादा होगा कि नहीं ? फिर रात में भी बड़बड़ाने लग जाओगे।

आमद कम खर्चा ज़्यादा लक्षण है मिट जाने का।

कूबत कम गुस्सा ज़्यादा लक्षण है पिट जाने का ॥

तो पिटते भी हैं और मिटते भी हैं, लेकिन टिकते तो हैं नहीं। इसलिए कम बोला करो। कम बोलने से गंभीरता बनी रहती है, सोचने की क्षमता बढ़ जाती है। यह इन पंक्तियों का तात्पर्य है।

ज़्यादा नहीं बोलना सभ्यता का प्रतीक माना जाता है। अधिक बोलना अनेक व्रतों में दोष का कारण है। जैसे- संक्लेशता का भी वह कारण हो सकता है, आचार्य कुंदकुंद महाराज की आज्ञा का उल्लंघन हो सकता है, विकथाओं से नहीं बच सकता है, अमूल्य समय का अपव्यय होता है, शारीरिक शक्ति का ह्रास होता है, भगवान की आज्ञा भंग होती है, विवाद भी बन सकता है,प्रेम-वात्सल्य भी भंग हो सकता है, उसका व्रत तो खण्डित हो ही जाता है तथा वह कभी भी अनुभय वचन का पालन नहीं कर सकता। एक पाव दूध पीने से जितनी शक्ति आती है, उतनी शक्ति एक अक्षर के उच्चारण करने में नष्ट हो जाती है।

आचार्यश्रीजी अल्पभाषी तो हैं ही। उनके अल्पभाषित्व को प्रकट करने वाला एक रोचक प्रसंग श्री सुरेश जैन सरल, जबलपुर ने 'विश्व वंद्य' नामक पुस्तक में पृष्ठ ४* पर लिखते हैं- 'उस समय का प्रसंग है, जब आचार्यश्रीजी की उम्र *८ वर्ष रही होगी।वे सन् १९८४ में पिसनहारी की मढ़िया, जबलपुर,मध्यप्रदेश में विराजमान थे। आचार्यश्रीजी से जब कोई वरिष्ठ विद्वान् पंडित वार्ता करने आते तब मैं अनुभव करता था कि पंडित जी तो कड़क भाषा में शिक्षक की तरह बोल रहे हैं, परंतु आचार्यश्रीजी छात्र की तरह झिझकते हुए सीमित शब्दों में उत्तर दे रहे हैं। कोई आधा घंटा वार्तालाप करता, तो कोई पौन घंटा, मगर आचार्यश्रीजी उन्हें समय देने में कतराते नहीं थे। मैं उस समय युवकही था। मेरा वार्ता श्रवण और निरीक्षण का ज्ञान परिपक्व नहीं था, यह बात मैं लगभग बीस वर्ष बाद जान पाया। जब तक नहीं जान पाया था, तब तक यही समझता रहा कि आचार्यश्रीजी झिझकते हैं। एक बार मैंने वार्ता करने वाले विद्वान् को बीच में ही टोक दिया था कि आप विनयपूर्वक वार्ता क्यों नहीं करते। मेरा वाक्य सुनकर वह विद्वान् क्षण भर को चुप रह गए, किंतु आचार्यश्रीजी मुझे देखकर मुस्कुरा उठे और हाथ से संकेत किया जैसे कह रहे हों- वार्ता में यह चलता है। यह बात मुझे अब समझ में आई कि वे न तब, न अब कभी नहीं झिझके।एक महान् पुरुष की तरह वाणी का शिष्टाचार बनाए रहते थे, जो जन-जन के लिए श्लाघनीय हैं।

तनसे चलो,मन को कसो – ९ जनवरी, १९९७, गुरुवार के दिन गुजरात यात्रा से लौटते समय आचार्यश्रीजी का नडियाद (खेड़ा) गुजरात नगर में प्रातःकाल प्रवेश हुआ। जनवरी माह की ठंड उसमें भी बारिश होने लगी। आहारचर्या के बाद क्षुल्लक श्री प्रज्ञासागरजी (सम्प्रति मुनि श्री अजितसागरजी) सहित कुछ शिष्यगण आचार्यश्रीजी के कक्ष में ही बैठे थे। क्षुल्लकजी का शरीर एकदम काँप रहा था, जिसे देख आचार्यश्रीजी बोले- 'क्यों प्रज्ञा! क्या हो रहा है?' वह बोले- 'आचार्यश्रीजी, बहुत ठण्डी लग रही है, वैसे ही ठंडी अधिक है और उस पर बारिश भी हो रही है। आचार्यश्रीजी बोले- 'अच्छा, ठंडी अधिक लग रही है। तो, अब क्या करना चाहिए?' क्षुल्लकजी थोड़ा हँसते हुए बोले- 'आज ठंडी में विहार नहीं होना चाहिए।' आचार्यश्रीजी बोले- 'कौन कहता है तुमसे विहार करने को? अरे! विहार तो तन से होता है, मन से स्थिर रहना चाहिए। क्षुल्लकजी बोले- 'बहुत कठिन काम है।' आचार्यश्रीजी बोले- 'श्रमण जो होता है, वह तन से विहार करता है, मन से सदा स्थिर रहता है। जो गृहस्थ लोग होते हैं, वे तन से स्थिर रहते हैं, मन से सदा विहार करते रहते हैं। तुम गृहस्थ नहीं हो, साधक हो। ठंडी से डरने से साधना नहीं होती, कदमों को आगे बढ़ाने से साधना होती है।

पुण्य में प्रमाद नहीं – एक आर्यिकाश्रीजी को असाध्य रोग हो गया। पत्र के माध्यम से उन्होंने प्रत्यक्ष गुरु दर्शन की भावना रखी। पुण्योदय से आचार्यश्रीजी की कृपा दृष्टि हो गई और उन्हें आने का आशीर्वाद मिल गया। उन्होंने दलपतपुर से विहार कर रहली में विराजमान आचार्य भगवन् के प्रत्यक्ष दर्शन का सौभाग्य पाया। गुरुदर्श पा वह अत्यंत खुश हुई। आचार्यश्रीजी शब्दशः आशीर्वाद देते हुए बोले- 'अब दर्शन हो गया न, सब ठीक हो जाएगा।' दूसरे दिन आर्यिकाश्रीजी किन्हीं कारणवश समय पर दर्शनार्थ नहीं पहुँच सकीं। तो समयपर्यायी आचार्यश्रीजी बोले- 'पुण्य में प्रमाद नहीं करना चाहिए।'

आर्यिकाश्रीजी ने क्षमा निवेदित की। वह बोलीं- 'आपके अपूर्व दर्शन को पाकर मुझे अपने स्वास्थ्य की बिल्कुल चिंता नहीं है?' आचार्यश्रीजी बोले- 'हाँ, अपनी चिंता करनी भी नहीं चाहिए। जो अपनी चिंता करते हैं, गुरु उसकी चिंता नहीं करते। देखो, मैं भी अपनी चिंता नहीं करता, मेरी चिंता तो आचार्य ज्ञानसागर महाराज करते हैं।' जब शिष्य, गुरु चरणों में अपने को समर्पित कर देता है, तो उसके सुख-दुःख की जिम्मेदारी गुरु अपने ऊपर ले लेते हैं।

होता सम्यग्दर्शन का दर्शन – सन् २००२, मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में आचार्यश्रीजी ससंघ विराजमान थे। वैसे तो चेहरे का हमेशा ही प्रसन्न एवं प्रशस्त रहना गुरुवर की अपनी एक स्वतंत्र पहचान है। पर एक दिन ईर्या भक्ति के समय आचार्यश्रीजी की कुछ विशेष प्रशस्त भाव से भरी

मुस्कान थी। ईर्यापथ भक्ति के उपरांत सभी महाराजों ने साहस कर आचार्यश्रीजी से पूछ ही लिया- आचार्यश्रीजी, आज आप क्यों मुस्कुरा रहे थे? तब आचार्यश्रीजी बोले- 'आप लोगों के लिए मैं एक अकेला दिख रहा हूँ। परंतु मुझे तो अपने सामने ४०-४० भावी सिद्धों (निग्रंथ साधुओं) के दर्शन हो रहे हैं। इसलिए प्रसन्न हो रहा हूँ।

धन्य हैं आचार्यश्रीजी! स्वयं के द्वारा दीक्षित श्रमणों में भावी सिद्धों के दर्शन एक शुद्ध सम्यग्दृष्टि पुरुष को ही हो सकते हैं । सम्यग्दर्शन जब भावों की परिधि से बाहर निकल कर आचार में ढलता है, तब कहीं जाकर ऐसी परिकल्पना आकार पाती है।

आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज के त्याग - आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज का सबसे महत्वपूर्ण त्याग आचार्य पद का त्याग था, जिसके तीन दिन बाद उन्होंने चंद्रगिरि तीर्थ, डोंगरगढ़ में सल्लेखना विधि से शरीर त्याग दिया। इससे पहले उन्होंने संघ के कार्यों से निवृत्ति ली और अपने शिष्य मुनिश्री समयसागरजी महाराज को आचार्य घोषित किया। उन्होंने नमक, चीनी, हरी सब्जी, तेल, दही, फल, और ड्रायफ्रूट्स, शक्कर, चटाई, सभी भौतिक साधन, थूकने का त्याग जैसे कई खाद्य पदार्थों का आजीवन त्याग किया था। उन्होंने 6 फरवरी 2024 को आचार्य पद का त्याग कर अपने शिष्य को यह पद दिया। 17 फरवरी 2024 को चंद्रगिरि तीर्थ, डोंगरगढ़ में उन्होंने सल्लेखना (उपवास) के माध्यम से अपने नश्वर देह को त्याग दिया।

उनका जीवन त्याग और तपस्या से परिपूर्ण था, जो समाज और साधकों को प्रेरित करता रहा। वे सभी भौतिक साधनों का त्याग कर अपनी साधना में लीन रहे। उनका त्याग न केवल शारीरिक बल्कि आध्यात्मिक भी था, जिसका उद्देश्य मोक्षमार्ग पर आगे बढ़ना रहा है, जिसमें वे सफल रहे हैं और प्रेरणास्रोत भी।

आचार्यश्री के द्वारा 31 प्रकार के विशेष त्याग, जो उन्हें सभी अलग बनाते हैं –

1. आजीवन तेल का त्याग,

2. आजीवन दही का त्याग,

3. ड्रायफ्रूट्स (सूखे मेवा) का त्याग,

4. आजीवन शक्कर का त्याग

5. आजीवन नमक का त्याग

6. आजीवन चटाई का त्याग

7. आजीवन हरी सब्जी का त्याग,

8. फलों का त्याग,

9. अंग्रेजी औषधि का त्याग,

10. सीमित ग्रास भोजन,

11. सीमित अंजुली जल, 365 ही दिन 24 घंटे में मात्र एक बार,

12. सभी प्रकार के भौतिक साधनों का त्याग,

13. थूकने का त्याग,

14. बिना चादर, गद्दे और तकिए के सिर्फ तखत पर एक करवट में शयन किसी भी मौसम में,

15. शहर से दूर खुले मैदानों में, नदी के किनारो पर अथवा पहाड़ो पर अपनी साधना करना,

16. अनियत विहारी अर्थात् बिना बताएं विहार करना,

17. आचार्य देशभूषण जी महाराज जी से जब ब्रह्मचारी व्रत से लिए स्वीकृति नहीं मिली तो 3 दिवस निर्जला उपवास करके 'हां' की स्वीकृति लेकर मानें।

18. कठिन दिनचर्या और जीवन के बाद भी स्वर्ग के देव जैसी उनकी मुख मुद्रा।

19. शरीर का तेज ऐसा, जिसके आगे सूरज का तेज भी फीका और कांति में चांद भी फीका, ऐसे दिगम्बर मुनि।

20. एक ऐसे संत जो सभी धर्मो में पूजनीय।

21. पूरे भारत में सबसे ज्यादा दीक्षा देने वाले गुरु।

22. प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति सभी के पद से अप्रभावित गुरु, सिर्फ अपनी साधना में रत।

23. मुनि दीक्षाएं, पीछी परिवर्तन आदि खास उदाहरण प्रचार-प्रसार से दूर रहकर किए।

24. पूरे भारत में एक ऐसे आचार्यश्री जिनका पूरा परिवार ही संयम के साथ मोक्षमार्ग पर है।

25. मुनि बनने से पूर्व ब्रह्मचारी अवस्था में भी परिवारजनों से चर्चा करने हेतु अपने गुरु से स्वीकृति लेना और परिजनों को भी पहले अपने गुरु के पास स्वीकृति लेने भेजना।

26. हजारों बालिकाओं को संस्कारित आधुनिक स्कूल का निर्माण।

27. एक ऐसे आचार्य भगवंत जो न केवल मानव समाज के उत्थान के लिए दूर की सोचते है, वरन् मूक प्राणियों के लिए भी उनके करुण हृदय में उतना ही स्थान था।

28. हजारों गाय की रक्षा और गौशाला का निर्माण किया।

29. समाधि संलेखना के समय में आचार्य पद का त्याग और 3 दिन का उपवास और मौन धारण किया।

30. पूरे देश में आचार्यश्री विद्यासागर ने पैदल ही भ्रमण किया।

31. सबसे खास और आखिरी बात- कोई बैंक का खाता नहीं, कोई ट्रस्ट नहीं, कोई जेब नहीं, कोई मोह-माया नहीं। अरबों रुपए जिनके ऊपर निछावर होते हैं उन गुरुदेव के कभी धन को स्पर्श नही किया।

आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज त्याग, तपस्या का जीवन्त स्वरूप है। जिन्होंने अपने स्वयं के जीवन को श्रेष्ठ बनाया है और अन्य सभी को श्रेष्ठ बनने की प्रेरणा दी है। वे सदा निर्दोष चर्या का पालन करते। समय से अपनी चर्या का निर्वहन करते। कभी भी उन्होंने समय की मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया। आहार-विहार-प्रतिक्रमण-सामायिक-ईर्यापथ आदि सभी क्रियाएं समय से की। इसमें कोई दोष नहीं लगाए। सच में, वे अनासक्त योगी है, निर्दोष चर्या के पालनकर्ता है, वे जीवन्त समयसार है, वे उत्कृष्ट साधक है, वे त्याग-तपस्या की अप्रतिम मूर्ति हैं।